<u>पंडित दीनदयाल उपाध्याय और पर्यावरण</u>

श्रीमती शांति सोनी

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय चिंतन परंपरा के ऐसे दार्शनिक, समाजशास्त्री और राष्ट्रनायक थे जिन्होंने "एकात्म मानववाद" के माध्यम से जीवन, समाज, प्रकृति और विकास के बीच संतुलन स्थापित करने का अद्भुत दर्शन प्रस्तुत किया। उनका चिंतन केवल राजनीति या आर्थिक नीतियों तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने मानव और पर्यावरण के पारस्परिक संबंध को भी अपनी विचारधारा का मूल केंद्र बनाया। आज जब विश्व पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन, वनों के विनाश और प्रदूषण जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है, तब दीनदयाल उपाध्याय का दर्शन न केवल प्रासंगिक बल्कि मार्गदर्शक सिद्ध होता है। उन्होंने ग्राम-स्वावलंबन, स्थानीय संसाधनों के संरक्षण, और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना को समाज के स्थायी विकास का आधार माना।

1. प्रस्तावना

"जीवन की प्राणधारा -प्रकृति"

हरी,भरी बादियों में जब मंद पवन मुस्कुराती है-
फूलों की कली जब भोर में गुनगुनाती है,
नील गगन के आंचल तले तब ओस मोती बन झरती है,
तब लगता है" -प्रकृति स्वयं जीवन का संगीत गाती है।

पर्वतों की चोटी पर बसा है शांत संदेश,
नदियों की कलकल में सुनाई देता है परमेश का वेश।
वृक्षों की छाया में छिपी है ममता की छाँव,
हर पत्ती कहती है- "संरक्षण ही जीवन की ठॉव।
धरती माँ की कोख से फूटता हर अंकुर पुकारे,
"संभालो मुझे मानव, मैं ही तुम्हारी सांसों का सहारा।'
प्रकृति का यह उपवन, स्नेह की यह धारा,
बिना इसके जीवन सूना, जैसे सूरज बिना उजियारा।
'भगवद्गीता' में 'श्रीकृष्ण' ने अनेक स्थानों पर 'प्रकृति (Nature) और 'पर्यावरण (Environment) के महत्व को बताया है। गीता केवल आध्यात्मिक ग्रंथ नही, बल्कि 'मानव और प्रकृति के बीच संतुलन का दार्शनिक ग्रंथ भी है।
निम्नलिखित 'श्लोक' प्रकृति और पर्यावरण के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

1. प्रकृति के शाष्वत चक्र का वर्णन - (अध्याय 3 श्लोक 14.15)

- अन्नाद्र भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भव:।
- यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञ: कमर्सर्मुभ्द्वः (3;14)
- कर्म ब्रम्होद्य विद्धि ब्रम्हाक्षरसमुद्म्।। (3;15)

भावार्थ- सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ (सत्कर्म) से होती है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है। यह श्लोक बताता है कि प्रकृति का संतुलन मानव के कर्म पर निर्भर है। यदि मनुष्य अपने कर्मों में संतुलन रखे, तो प्रकृति भी संतुलित रहती है।

2. प्रकृति और पुरुष का संबंध - (अध्याय 13 श्लोक 19-20)

'प्रकृति पुरुष चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्रच गुणांश्रचैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। (13-19)
“भावार्थ”- प्रकृति और पुरुष (ईश्वर/जीव) दोनों अनादि हैं और संसार के सारे परिवर्तन और गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। यह श्लोक 'प्रकृति को सृष्टि की मूल जननी' के रूप में स्वीकार करता है।

3. 'प्रकृति की तीन गुणात्मक शक्तियाँ - (अध्याय 14-श्लोक 5)

सत्तवं रजस्तम इति गुणा: प्रकृतिसम्भवा:।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।। (14;5)
“भावार्थ”-सत्तव, रज और तम-ये तीन गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और ये ही जीव को शरीर से बाँधते हैं। इससे स्पष्ट है कि मानव और प्रकृति के बीच अटूट संबंध है।

4. 'प्रकृति में ईश्वर का सर्वव्यापक रूप- (अध्याय9, श्लोक 10)

मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। (9;10)
"भावार्थ"- प्रकृति भगवान की अधीन है: उन्हीं की आज्ञा से चलायमान होकर वह चराचर जगत उत्पन्न और विनष्ट होता है। यह बताता है कि 'प्रकृति ईश्वर की आज्ञाकारिणी शक्ति है।

5; 'सृष्टि के संतुलन मे प्रकृति का महत्व- (अध्याय 7, श्लोक 4-5)

भूमिरापोअनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। (7;4)
अपरेयमितस्त्न्यां प्रकृति विद्धि मे पराम्।
जीवभतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।
"भावार्थ"- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अंहकार- ये मेरी आठ भिन्न प्रकृतियाँ हैं।

प्रकृति और मानव का एकत्व: पंडित दीनदयाल उपाध्याय और श्रीकृष्ण का दार्शनिक संवाद- पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय चिंतन परंपरा के उन महान दार्शनिकों में से हैं, जिन्होंने जीवन, समाज और प्रकृति के संबंध को एकात्म दृष्टि से देखा। उनका "एकात्म मानववाद" न केवल सामाजिक या आर्थिक दर्शन है, बल्कि वह एक ऐसी जीवन-दृष्टि है, जिसमें प्रकृति और मानव के बीच संतुलन को सर्वोपरि माना गया है। उनका यह दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति की उसी परंपरा से निकला है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण जैसे लोकनायक प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, सह-अस्तित्व और संरक्षण के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

भारतीय संस्कृति में भगवान श्रीकृष्ण का चरित्र केवल अध्यात्मिक या दार्शनिक नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति गहरे प्रेम और संरक्षण का प्रतीक भी है। उन्होंने अपने जीवन के माध्यम से यह सिखाया कि मनुष्य को अपने परिवेश, जल, वायु, वृक्ष, पशु-पक्षी और पृथ्वी के साथ आत्मीय संबंध रखना चाहिए। जब यमुना नदी कालिया नाग के विष से प्रदूषित हो गई थी, तब श्रीकृष्ण ने उसे शुद्ध करके पुनः जीवन प्रदान किया। यह घटना केवल एक पौराणिक कथा नहीं, बल्कि पर्यावरणीय शुद्धता और जल संरक्षण का संदेश है।

इसी प्रकार, जब इंद्र ने अहंकारवश मूसलाधार वर्षा करके ग्वालों और गोपियों को संकट में डाल दिया, तब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाकर न केवल उनका रक्षण किया, बल्कि प्रकृति की पूजा का संदेश भी दिया। उन्होंने गोवर्धन की पूजा को इंद्र की पूजा से श्रेष्ठ बताया, क्योंकि यह पर्वत धरती, जल, पशु और मनुष्य सभी का पोषण करता है। यह विचार पंडित दीनदयाल उपाध्याय के "प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व" के सिद्धांत से सीधा संबंध रखता है। उपाध्याय जी का मानना था कि मनुष्य का कर्तव्य है कि वह प्रकृति का शोषण न करे, बल्कि उसे परिवार का अंग समझे।

श्रीकृष्ण का जीवन पशु-पक्षियों और वनस्पतियों के प्रति करुणा और प्रेम से भरा हुआ था। उनका गौपालन और गोसंवर्धन का कार्य केवल आर्थिक या धार्मिक कृत्य नहीं था, बल्कि प्रकृति संरक्षण की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण था। उन्होंने 'धेनु' को संपन्नता और जीवन का आधार माना। यह दृष्टिकोण पंडित दीनदयाल उपाध्याय के उस विचार से मेल खाता है, जिसमें उन्होंने ग्राम्य जीवन, गौसंवर्धन और स्वदेशी अर्थव्यवस्था को पर्यावरणीय संतुलन का आधार बताया।

श्रीकृष्ण की प्रिय वस्तुएँ कालिन्दी (यमुना), वैजयंती माला, मयूर पिच्छ, बांसुरी, कदंब की छाँव और गाय ये सब प्रतीक हैं प्रकृति के साथ गहरे तादात्म्य के। यह तादात्म्य इस बात की घोषणा करता है कि श्रीकृष्ण केवल धर्म के प्रवर्तक ही नहीं, बल्कि पर्यावरण के भी सच्चे संरक्षक थे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय भी यही कहते हैं कि "मानव और प्रकृति विरोधी नहीं, परस्पर पूरक हैं।" उनके अनुसार, यदि मनुष्य प्रकृति से अलग होकर केवल भौतिक सुख की ओर बढ़ेगा, तो असंतुलन उत्पन्न होगा। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने प्रकृति के साथ अपने अभेद को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं "अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां" अर्थात्, "वृक्षों में मैं पीपल हूँ।" इसी प्रकार वे ऋतुओं में बसंत और नदियों में गंगा को अपना रूप बताते हैं। यह कथन प्रकृति के साथ एकात्मता की घोषणा है। दीनदयाल उपाध्याय भी इसी भाव को अपने दर्शन में प्रकट करते हैं। उनके अनुसार, सृष्टि की हर इकाई, चाहे वह मानव हो, पशु, वनस्पति या जल, सबमें एक ही चेतना प्रवाहित है। अतः प्रकृति का सम्मान करना, वास्तव में उस चेतना का सम्मान करना है, जो सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त है।

श्रीकृष्ण ने वृंदावन की हरियाली, यमुना के तट और कदंब वृक्षों के बीच जीवन बिताया। उन्होंने वहाँ के पशु-पक्षियों, ग्वाल-बालों और ग्रामीणों के साथ ऐसा जीवन जिया, जो प्रकृति के प्रति पूर्ण श्रद्धा और सामंजस्य का उदाहरण है। उन्होंने स्वयं कहा- "वनं मे देहरूपकम्" अर्थात् "वृंदावन मेरे शरीर के समान है।" यह कथन यह बताता है कि उनके लिए प्रकृति केवल बाहरी तत्व नहीं, बल्कि आत्म का विस्तार थी। यही भावना पंडित दीनदयाल उपाध्याय के "एकात्म मानववाद" का मूल है, जिसमें मानव और प्रकृति के बीच कोई भेद नहीं माना गया।

आज जब विश्व पर्यावरणीय संकट से जूझ रहा है, तब पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचार और श्रीकृष्ण के जीवन-दर्शन दोनों हमें यह सिखाते हैं कि विकास का सही मार्ग वही है, जो प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व पर आधारित हो। दीनदयाल जी ने ग्राम स्वावलंबन, स्थानीय संसाधनों के संरक्षण और प्राकृतिक जीवन-पद्धति को आधुनिक विकास के मुकाबले अधिक मानवीय और स्थायी बताया। श्रीकृष्ण की भाँति उन्होंने भी चेताया कि जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं से आगे बढ़कर इच्छाओं के अधीन हो जाता है, तब प्रकृति का विनाश आरंभ होता है।

2. पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन एवं चिंतन का परिचय (पर्यावरणीय दृष्टि सहित)

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय राजनीति, दर्शन और समाजशास्त्र के ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व थे, जिन्होंने अपने चिंतन से भारत को आत्मनिर्भर, नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध राष्ट्र बनाने की दिशा दिखाई। वे केवल एक राजनीतिक नेता नहीं, बल्कि एक गहन विचारक, दार्शनिक और कर्मयोगी थे, जिनका सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र सेवा और मानव कल्याण के लिए समर्पित रहा। उनके विचारों में भारतीय संस्कृति, अध्यात्म और सामाजिक समरसता के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण के प्रति गहरी संवेदनशीलता भी निहित थी।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितंबर 1916 को उत्तर प्रदेश के मथुरा जनपद के नगला चंद्रभान नामक छोटे से गाँव में हुआ था। बचपन में ही माता-पिता के देहांत ने उनके जीवन में कठिन परिस्थितियाँ पैदा कीं, परंतु इन्हीं परिस्थितियों ने उनमें आत्मनिर्भरता, सादगी, कठोर परिश्रम और संवेदनशीलता जैसे गुणों का विकास किया। ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े दीनदयाल जी ने भारतीय ग्राम्य जीवन, कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था और प्रकृति के साथ मनुष्य के सहज संबंध को बहुत गहराई से अनुभव किया। यही अनुभव आगे चलकर उनके चिंतन में प्रकृति-चेतना और पर्यावरणीय संतुलन के रूप में प्रकट हुआ।
विद्यालय के दिनों से ही उनमें राष्ट्रभक्ति और समाज सेवा की भावना प्रबल थी। वे आर्य समाज और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े, जहाँ उन्हें सामाजिक उत्थान, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और सामुदायिक जीवन में पर्यावरणीय अनुशासन की शिक्षा मिली। संघ के प्रचारक के रूप में पूरे देश में भ्रमण करते हुए उन्होंने भारतीय समाज की ताकत और कमज़ोरियों को नज़दीक से समझा, विशेषकर यह कि ग्रामीण भारत का जीवन प्रकृति के साथ गहरे संबद्ध है और उसका संरक्षण ही वास्तविक विकास का आधार हो सकता है।

राजनीतिक क्षेत्र में उनका प्रवेश भारतीय जनसंघ की स्थापना से हुआ। जनसंघ में उन्होंने संगठन को वैचारिक दिशा देने के साथ-साथ यह स्पष्ट किया कि भारत का विकास केवल औद्योगिक या शहरी विस्तार पर आधारित नहीं होना चाहिए, बल्कि स्थानीय संसाधनों, स्वदेशी उत्पादन, जैविक संतुलन और पर्यावरण-अनुकूल जीवन-शैली पर आधारित होना चाहिए।

उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान “एकात्म मानववाद” का दर्शन है, जो न केवल सामाजिक-आर्थिक सिद्धांत है, बल्कि एक पर्यावरणीय दृष्टिकोण भी है। पश्चिमी विचारधारा जहाँ मनुष्य को प्रकृति से अलग मानकर केवल भौतिक प्रगति पर बल देती है, वहीं दीनदयाल जी का एकात्म मानववाद मानव, समाज और प्रकृति, तीनों के जैविक एकत्व पर आधारित है। उनके अनुसार-“मानव और प्रकृति विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हैं।”

उन्होंने स्पष्ट कहा कि मनुष्य की आवश्यकताओं और इच्छाओं के बीच संतुलन न रहे तो प्रकृति का दोहन विनाशकारी रूप ले लेता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार पुरुषार्थों पर आधारित उनका चिंतन यह बताता

है कि भौतिक संसाधनों का उपयोग धर्म अर्थात् नैतिकता और कर्तव्यबोध के नियंत्रण में होना चाहिए, ताकि प्रकृति का संतुलन बना रहे और समाज दीर्घकालिक विकास की ओर बढ़ सके।

दीनदयाल उपाध्याय का दर्शन भारतीय जीवन-दृष्टि का पुनर्प्रतिष्ठापन है। उन्होंने ज़ोर दिया कि भारत को अपने विकास मॉडल में ग्राम स्वावलंबन, जैविक खेती, गौसंवर्धन, जल-संरक्षण, वृक्षारोपण और स्थानीय पर्यावरणीय संरचना को प्राथमिकता देनी चाहिए। उनका "अंत्योदय" का सिद्धांत भी पर्यावरण से जुड़ा है, क्योंकि समाज का सबसे अंतिम व्यक्ति वही होता है, जो प्राकृतिक संसाधनों पर सबसे अधिक निर्भर रहता है। इस प्रकार, पर्यावरणीय विनाश का सबसे दु:खद प्रभाव उसी पर पड़ता है। इसलिए वे कहते थे कि सच्चा विकास वही है जो अंतिम व्यक्ति तक प्रकृति-सम्मत समृद्धि पहुँचाए।

उन्होंने चेताया कि पश्चिमी भोगवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति अंधाधुंध औद्योगीकरण और प्रकृति के शोषण को बढ़ावा देती है, जो भारतीय जीवन-दृष्टि के विपरीत है। इसके स्थान पर उन्होंने पर्यावरण-उन्मुख, स्वदेशी, मानवीय और आनंदमय जीवन-व्यवस्था का समर्थन किया। उनके लिए प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि चेतना का अंग थी, जीवन का अविभाज्य हिस्सा।

3. "एकात्म मानववाद" और पर्यावरणीय दृष्टिकोण

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का "एकात्म मानववाद" केवल राजनीतिक या सामाजिक दर्शन का रूप नहीं है, बल्कि यह मानव, समाज और प्रकृति के मध्य संतुलन एवं सामंजस्य पर आधारित एक समग्र जीवन-दृष्टि है। इस विचारधारा का मूल उद्देश्य मनुष्य के भौतिक विकास के साथ-साथ संपूर्ण सृष्टि के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है। उपाध्याय जी स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य और प्रकृति का संबंध प्रतिस्पर्धा का नहीं, बल्कि पूरकता और सह-अस्तित्व का होना चाहिए।

"एकात्म मानववाद" के केंद्र में यह मान्यता निहित है कि जीवन के चार आयाम- शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा, तभी संतुलित रह सकते हैं, जब मनुष्य समाज एवं प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करे। आधुनिक युग में विज्ञान और तकनीकी प्रगति के प्रभाव में मनुष्य ने भौतिक संसाधनों की ओर तो तेज़ी से कदम बढ़ाए हैं, परंतु प्रकृति के साथ अपने पारंपरिक, संतुलित संबंधों को उपेक्षित कर दिया है। उपाध्याय जी ने इस असंतुलन के संभावित दुष्परिणामों को बहुत पहले समझ लिया था। उन्होंने चेताया कि यदि मनुष्य विकास को केवल उपभोगवृत्ति तक सीमित कर देगा, तो वह प्रकृति का शोषक बनकर अंततः अपने ही अस्तित्व को संकट में डाल देगा।

उनके अनुसार प्रकृति कोई निर्जीव वस्तु नहीं, बल्कि एक सजीव सत्ता है; जीवन का आधार। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश जैसे पंचतत्व केवल पर्यावरण के घटक नहीं, बल्कि मानव-शरीर और जीवन के अभिन्न अंग हैं। जब इन तत्वों में असंतुलन उत्पन्न होता है, तो मानव जीवन भी प्रभावित होता है। उपाध्याय जी यह स्पष्ट करते हैं कि जैसे शरीर के अंग एक-दूसरे के पूरक होते हैं, वैसे ही वनस्पति, पशु, पर्वत, नदियाँ और वातावरण भी सृष्टि-व्यवस्था में एक-दूसरे के सहायक हैं। इनके शोषण का अर्थ है मानव-जीवन की नींव को ही कमज़ोर करना।

उपाध्याय जी की यह दृष्टि आधुनिक पर्यावरणीय विमर्श के आधार-तत्वों से साम्य रखती है। आज विश्व ग्लोबल वार्मिंग, वनों की कटाई, जल एवं वायु प्रदूषण, जैव-विविधता के ह्रास जैसे संकटों से जूझ रहा है, जिसका मूल कारण प्रकृति को मात्र उपभोग की वस्तु मानने की प्रवृत्ति है। किंतु उपाध्याय जी ने दशकों पूर्व ही यह स्पष्ट कर दिया था कि विकास का वास्तविक अर्थ केवल उत्पादन और उपभोग में वृद्धि नहीं, बल्कि संरक्षण, संतुलन और निरंतरता में निहित है। उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक परंपरा “पृथ्वी मातरं पूजयामि” से प्रेरित होकर “सतत विकास” की अवधारणा को भारतीय जीवन-मूल्यों के अनुकूल रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें मनुष्य उपभोक्ता नहीं, बल्कि प्रकृति का संरक्षक है। उपाध्याय जी के अनुसार मनुष्य और प्रकृति का संबंध केवल भौतिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक भी है। वृक्षों का विनाश, नदियों का प्रदूषण या पशुओं का शोषण केवल पर्यावरण का ही नहीं, नैतिक मूल्यों का भी ह्रास है। इसी कारण वे मनुष्य का प्रथम कर्तव्य प्रकृति के दोहन नहीं, बल्कि उसके संरक्षण को मानते हैं।

"एकात्म मानववाद" की पर्यावरणीय चेतना आज विशेष रूप से प्रासंगिक है, क्योंकि यह संयम, संतुलन और सामंजस्य के सिद्धांत पर आधारित है। उपाध्याय जी मनुष्य को “आवश्यकता” और “इच्छा” के बीच अंतर समझने पर बल देते हैं। आवश्यकताएँ सीमित होती हैं, जबकि इच्छाएँ अनंत। इच्छाओं के अनियंत्रित विस्तार से ही प्रकृति का अंधाधुंध दोहन होता है। इसलिए वे भारतीय जीवन-मूल्य “कम संसाधनों में संतोष” अपनाने की सलाह देते हैं, जिससे जीवन और प्रकृति दोनों में संतुलन बना रहे।
पर्यावरण संरक्षण केवल शासन या नीति-निर्माताओं की ज़िम्मेदारी नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक का नैतिक दायित्व है। उपाध्याय जी के संदर्भ में “धर्म” का आशय धार्मिक अनुष्ठानों से नहीं, बल्कि कर्तव्य, नैतिकता और अनुशासन से है। उनके अनुसार “धर्म” वही आचरण है जो समाज और सृष्टि की रक्षा करे; इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण स्वयं एक धार्मिक और नैतिक कर्तव्य बन जाता है।

4. ग्राम स्वराज और पर्यावरण संरक्षण

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के सूक्ष्म अध्येता थे। उनका मत था कि भारत की असली आत्मा उसके गाँवों में निवास करती है, जहाँ भारतीय जीवन-शैली का मूलस्वरूप- आत्मनिर्भरता, परस्पर सहयोग और प्रकृति के साथ संतुलित सह-अस्तित्व सर्वाधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। इसी कारण उपाध्याय जी “ग्राम स्वराज” और “पर्यावरण संरक्षण” को परस्पर अविच्छेद्य मानते थे। उनके विचार में ग्राम स्वराज केवल राजनीतिक या आर्थिक ढाँचा नहीं, बल्कि एक ऐसी समग्र जीवन-दृष्टि है, जिसमें मानव, समाज और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखते हुए सतत और समरस विकास की परिकल्पना निहित है।

दीनदयाल उपाध्याय ने महात्मा गाँधी की ग्राम स्वराज की अवधारणा को न केवल आगे बढ़ाया, बल्कि उसे भारतीय परंपराओं और आवश्यकताओं के अनुरूप अधिक व्यवहारिक रूप भी प्रदान किया। गाँधीजी के अनुसार, वास्तविक स्वराज का आधार राजनीतिक स्वतंत्रता से अधिक आर्थिक और सामाजिक स्वावलंबन में निहित है। उपाध्याय जी इस विचार को विस्तृत करते हुए कहते हैं कि जब तक भारत के गाँव आत्मनिर्भर नहीं होंगे, तब तक राष्ट्रीय विकास अधूरा रहेगा। “एकात्म मानववाद” के उनके दर्शन में भी ग्राम स्वराज- व्यक्ति, समुदाय और राष्ट्र, तीनों के समन्वित विकास की अनिवार्य शर्त के रूप में समाहित है।

उनके अनुसार, ग्राम स्वराज का वास्तविक अर्थ तीन मूलभूत तत्वों में निहित है; स्वावलंबन, सहयोग और संरक्षण। स्वावलंबन का आशय है कि गाँव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय संसाधनों से करे और बाहरी निर्भरता को न्यूनतम रखे। सहयोग का तात्पर्य है कि ग्रामवासी सामूहिक निर्णय और साझा प्रयासों के माध्यम से विकास को आगे बढ़ाएँ। संरक्षण का अभिप्राय है कि ग्राम समुदाय अपने प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, भूमि, वन, पशु-संपदा और जैव-विविधता की रक्षा करे तथा उनका विवेकपूर्ण एवं न्यायसंगत उपयोग सुनिश्चित करे।

उपाध्याय जी का मत था कि “ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था ही सतत और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित विकास का वास्तविक आधार है।” वे पश्चिमी औद्योगिक मॉडल की आलोचना करते हुए स्पष्ट करते हैं कि वह प्रकृति का अनियंत्रित दोहन कर मानव-जीवन में असंतुलन पैदा करता है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए केंद्रीकृत, उद्योग-आधारित अर्थव्यवस्था न तो स्वाभाविक है और न टिकाऊ। इसके विपरीत, ग्रामोद्योग, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग और जैविक कृषि पर आधारित विकेंद्रीकृत स्थानीय अर्थव्यवस्था दीर्घकालिक रूप से अधिक उपयुक्त और पर्यावरण-सम्मत है।

उन्होंने यह भी बल दिया कि गाँव की आत्मनिर्भरता तभी संभव है, जब संसाधनों का प्रबंधन संतुलन और न्याय के आधार पर हो। जल संरक्षण हेतु परंपरागत प्रणालियों; तालाब, कुएँ, नहरें और वर्षा जल संचयन के पुनर्जीवन पर उन्होंने विशेष ध्यान देने की आवश्यकता बताई। वृक्षारोपण, पशुपालन, जैव-विविधता का संरक्षण, स्वच्छता, कचरा प्रबंधन और नवीकरणीय ऊर्जा (जैसे बायोगैस एवं सौर ऊर्जा) का स्थानीय उपयोग ग्राम्य जीवन का अभिन्न और अनिवार्य अंग होना चाहिए।

उपाध्याय जी के अनुसार ग्राम स्वराज केवल आर्थिक स्वरूप का परिवर्तन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनरुत्थान का भी मार्ग है। भारतीय संस्कृति का केंद्रीय मूल्य, प्रकृति के साथ सामंजस्य और “वसुधैव कुटुम्बकम्” की भावना, ग्राम जीवन में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। जब गाँव आत्मनिर्भर बनते हैं, तो इससे आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ सामाजिक और पर्यावरणीय संतुलन भी स्थापित होता है। यही वह स्वराज है, जिसमें व्यक्ति स्वतंत्र होने के साथ-साथ उत्तरदायी भी होता है। उनका दर्शन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि विकास का वास्तविक मापदंड मानव और प्रकृति दोनों के कल्याण में निहित है। उन्होंने भारतीय परंपरा के उस प्राचीन भाव को पुनः स्मरण कराया जिसमें कहा गया है- “पृथ्वी माता है और हम उसके पुत्र हैं।” यह दृष्टिकोण संकेत करता है कि पर्यावरण संरक्षण केवल नीतिगत दायित्व नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक कर्तव्य भी है।

वर्तमान समय में, जब जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, वनों की कटाई और प्राकृतिक संसाधनों की कमी जैसी चुनौतियाँ गंभीर रूप ले चुकी हैं, तब दीनदयाल उपाध्याय का ग्राम स्वराज-विमर्श और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। उनका यह विचार- “स्थानीय आत्मनिर्भरता ही वैश्विक पर्यावरण संरक्षण का आधार है”, आज के सतत विकास के सिद्धांतों से पूर्णतः मेल खाता है।

7. निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दर्शन भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों पर आधारित एक समग्र विचार प्रणाली है। उनके एकात्म मानववाद में मानव, समाज और प्रकृति का संतुलित संबंध निहित है। उन्होंने आधुनिक सभ्यता की उस प्रवृत्ति का विरोध किया, जिसमें प्रकृति को केवल उपभोग की वस्तु माना जाता है। उनका संदेश था कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखे, प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना अपनाए, और विकास

को केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय दृष्टि से भी सार्थक बनाए। आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय असंतुलन से जूझ रहा है, तब दीनदयाल उपाध्याय का दर्शन हमें चेतावनी और दिशा दोनों प्रदान करता है। उनका एकात्म मानववाद मानवता के लिए एक ऐसा मार्ग है, जो प्रकृति, समाज और व्यक्ति तीनों के संतुलन पर आधारित है। यही उनकी विचारधारा की सबसे बड़ी पर्यावरणीय देन है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन हमें यह सिखाता है कि "विकास केवल भौतिक समृद्धि का नाम नहीं है, बल्कि यह प्रकृति, समाज और मानव- तीनों के बीच "संतुलित समरसता" का परिणाम है। उनका दर्शन "एकात्म मानववाद" इस तथ्य को रेखांकित करता है कि मनुष्य प्रकृति से अलग नहीं, बल्कि उसका अविभाज्य हिस्सा है।

"जब हम धरती का आदर करते हैं, तब वास्तव में हम अपने ही अस्तित्व का सम्मान करते है"। आज जब पृथ्वी पर्यावरण संकट और जलवायु परिवर्तन की कठिनाइयों से गुज़र रही है, तब दीनदयाल उपाध्याय के विचार हमारे लिए "दिशासूचक दीपक" की तरह हैं। उन्होंने हमें सिखाया कि "सच्चा विकास वही है, जो प्रकृति को साथ लेकर चले, न कि उसके विरूद्ध।" "विकास का अर्थ विनाश नहीं, बल्कि जीवन का विस्तार है- वह विस्तार जो मानवता और प्रकृति दोनों के लिए कल्याणकारी हो।"

उनका सादा जीवन ग्रामोन्मुख चिंतन और पर्यावरण-समर्थ विचार हमें यह प्रेरणा देते है कि हम "धरती को केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि पूज्य माता के रूप में देखें।" "धरती हमारी माता है- इसका संरक्षण ही हमारा सच्चा धर्म और कर्तव्य है।" इस प्रकार, पंडित दीनदयाल उपाध्याय का पर्यावरण प्रेम हमें यह संदेश देता है कि "मानवता का भविष्य तभी सुरक्षित है, जब विकास की दिशा में पर्यावरण की ध्ड़कनें भी सुनाई दें।" उनके विचारों की यह ज्योति हमें निरंतर यह याद दिलाती है-"प्रकृति के साथ चलो - वही जीवन का सच्चा मार्ग है।"

संदर्भ सूची

1. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद. संस्करण-1965, भारतीय जनसंघ प्रकाशन, नई दिल्ली

2. मिश्रा, रामशंकर. पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दर्शन और आज का भारत, संस्करण-2016, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

3. शर्मा, नरेश, भारतीय संस्कृति और पर्यावरणीय चेतना, संस्करण-2018, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

4. जोशी, मोहनलाल, एकात्म मानववाद: दर्शन और व्यवहार, संस्करण-2015, साहित्य भवन, नई दिल्ली

5. भारत सरकार, मिशन लाइफ (पर्यावरण के लिए जीवनशैली), संस्करण-2022, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली

6. सिंह, वासुदेव, भारतीय चिंतन में पर्यावरण का स्थान, संस्करण- 2020, जयपुर: राजस्थानी ग्रंथागार

7. गाँधी, मोहनदास करमचंद, हिंद स्वराज अथवा भारतीय स्वराज्य, संस्करण-1938, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद

8. वर्मा, पी. एस. एकात्म मानववाद और सतत विकास: एक तुलनात्मक अध्ययन, वर्ष-2021, भारतीय राजनीतिक विचार पत्रिका, खंड 32

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, महमंद,
विकासखण्ड बिल्हा, जिला-बिलासपुर (छ.ग.) पिन-495004